'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २२ | वाराणसी, गुरुवार, १९ फरवरी, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

उदयपुर (राज०) ३१-१-'५९

नव समाज-रचना की दिशा में

कुछ वर्षों पूर्व मैं एक बार यहाँ आया था। आज दूसरी बार आ रहा हूँ। पहली बार की मेरी यात्रा 'शान्ति-यात्रा' थी। इस बार 'शान्तिमय क्रान्ति-यात्रा' है। स्वराज्य-प्राप्ति के समय हिन्दुस्तान में इधर-उधर अशान्ति फूट निकली थी। हिन्दू, मुसलमान तथा सिखों के झगड़े चल रहे थे। सारे राष्ट्र में उसके परिणाम परिलक्षित हो रहे थे। तब शान्ति-स्थापना के लिए हमारी यात्रा चली थी। उसी संदर्भ में मैं यहाँ आया था।

आज भारत को ही नहीं, बल्कि संसार के समूचे राष्ट्रों को शान्ति की आवश्यकता है। जो राष्ट्र अशान्ति के उपकरण बढ़ाते रहे तथा बढ़ा भी रहे हैं, वे सच्चे दिल से शान्ति चाहते हैं। इस विज्ञान के युग में मनुष्य के हाथों में ऐसे अद्भुत औजार आ गये हैं, जिनका प्रयोग करने से वे मनुष्य के हाथों में नहीं रहेंगे, मनुष्य ही उनके हाथों में चले जायँगे। विज्ञान ने एक-से-एक अनूठे आविष्कार किये हैं। विज्ञान का उपयोग शान्ति-स्थापना में भी हो सकता है और अशान्ति फैलाने में भी। जीवन-समृद्धि में यदि विज्ञान का उपयोग किया जाय तो वह उतना ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है, जितना जीवन-विनाश में सहायक होता है। एक ओर सुख-समृद्धि लाने में विज्ञान के पास अपार क्षमता है तो दूसरी ओर नर-संहार करने की अक्षय ताकत! ऐसी स्थिति में मानव और मानवता की सुरक्षा के लिए विज्ञान का समुचित उपयोग करना अत्यन्त जरूरी है। अगर हम वैसा न कर सके तो मानव और मानवता का विनाश हो जायगा। सृष्टि का प्रलय हो जायगा। इसीलिए आज उन राष्ट्रों के लोगों को भी शान्ति की प्यास है, जो अशान्ति के उपकरण मुहैया कर रहे हैं।

विचारों के दो प्रवाह

आज समाज-व्यवस्था बहुत असंतुलित है। उत्पादन, विनिमय तथा उपभोग के सभी क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता चल रही है। इससे कुछ लोग उठे हैं और कुछ लोग दब गये हैं। कुछ शासक बन गये हैं, कुछ शोषक। इतनी असंतुलित व्यवस्था में हम शांति के स्थायित्व की कल्पना करें, यह सम्भव नहीं है। वर्तमान के शान्तिवादी समाज में ज्यादा परिवर्तन करने का साहस नहीं कर रहे हैं। वे जानते हैं कि आज भी मनुष्य-समाज दुःखी है। एक जमात दूसरी जमात को दबा रही है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को तबाह कर रहा है। उनमें सुधार होना ही चाहिए। किन्तु वे उन सुधारों में जल्दी नहीं करना चाहते। धीरे-धीरे परिवर्तन करना ही उन्हें इष्ट है।

उधर क्रांतिवादी हैं। वे यह मानते हैं कि समाज की सड़ी-गली व्यवस्थाओं को नष्ट कर देना चाहिए। नया समाज, नया दृष्टिकोण और नये युग का सृजन करना चाहिए। इसके लिए शान्तिपूर्वक परिवर्तन होना सम्भव हो तो ठीक है, अन्यथा अशान्ति का आधार लेकर भी वह परिवर्तन तो कर ही लेना चाहिए।

विचारों के दो प्रवाह हैं। इन दोनों को शांति की आवश्यकता प्रतीत होती है। जिसके हाथ में सत्ता है, वह सत्ता की सुरक्षा के लिए शान्ति चाहता है और जो परिवर्तनाकांक्षी है, वह समाज-सुधार के लिए शान्ति को अनिवार्य मानता है। दोनों-के-दोनों शान्ति चाहते हैं। क्रांतिवादी और शान्तिवादियों का शान्ति के प्रश्न पर अब मतैक्य हो रहा है। अब दोनों का दोनों के बिना कल्याण नहीं है।

हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी ने घोषणा की है कि हम शान्तिमय साधनों को पसन्द करते हैं एवं हिन्दुस्तान में शान्तिमय साधनों से ही साम्यवाद आये, ऐसा चाहते हैं। कुछ उनपर अविश्वास करते हैं, लेकिन मुझे उनपर कतई अविश्वास नहीं है। मैं अविश्वास करनेवालों से कहना चाहता हूँ कि कोई भी अखिल भारतीय पक्ष शान्तिमय साधनों से परिवर्तन करने की घोषणा करता है और यदि वैसा नहीं करता है तो उसके अनुयायी आपस में एक होकर नहीं रह सकेंगे। वे राष्ट्र को तो धोखा देंगे ही, परन्तु अपने-आपको भी धोखे के परिणामों से बचा नहीं सकेंगे।

कांग्रेसवालों ने जाहिर किया है कि हम समाजवाद चाहते हैं। इसपर भी विरोधी पक्षवाले अविश्वास करने लगे। सभी एक स्वर से कहने लगे कि यह तो समाजवाद की ओट में कांग्रेसवाले अपने स्वार्थों की रक्षा कर रहे हैं। उन अविश्वास करनेवालों से मैं कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय संस्था पर अविश्वास रखना अवैज्ञानिक है।

विज्ञान के जमाने में अविश्वास रखकर कोई काम नहीं किया जा सकता। इस युग में शब्दों का खेल नहीं हो सकता। न शब्दों से लोगों को ठगा ही जा सकता है। इस युग में शब्द ही शक्ति है। जो शब्द कहा जायगा, वह अवश्य फैलेगा। जिसने वह फैलाया होगा, उसके मन में तदनुरूप आचरण करने पर विश्वास नहीं होगा तो वही उसे काटेगा और अन्त में वह व्यापक बनेगा। अतः कांग्रेस जैसी बड़ी जमात अपने देश में समाजवाद लाने की बात करती है तो उसपर विश्वास करना चाहिए। विश्वास रखकर ही हम एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं, गतिरोध मिटा सकते हैं और अपने चिंतन में संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन कर सकते हैं।

शान्ति और क्रान्ति का समन्वय

इस तरह एक-एक कर सभी लोग शस्त्र-शक्ति को छोड़कर शान्ति की तरफ आ रहे हैं। साम्यवादी भी आ रहे हैं। साम्यवादी अब समझ गये हैं कि शस्त्र-शक्ति ने ऐसी कसम नहीं खायी है कि मैं अच्छे मनुष्यों के हाथ में ही रहूँगी, साम्यवादियों के हाथ में ही रहूँगी। वह तो निष्पक्ष है। शस्त्र-शक्ति सज्जनों के हाथ में भी रह सकती है और दुर्जनों के हाथ में भी। वह साम्यवादियों के हाथों में रह सकती है तो वैषम्यवादियों के हाथ में भी रह सकती है। पूँजीवादी भी शस्त्र-शक्ति के उपासक हैं। समाजवादी भी उसी की पूजा करते हैं। शस्त्र-देवता पक्ष रहित बन गये हैं, इसलिए सभी-के-सभी वादी उसकी पूजा में लगे हैं। जितने बम अमेरिका बना सकता है, उतने ही रूस भी बना सकता है और जितने बम रूस बना सकता है, उतने ही अमेरिका भी बना सकता है। इन परस्परविरोधी लोगों के हाथ में शस्त्रास्त्र आ जाने से ये बेकार बन जाते हैं। यदि कारगर होते हैं तो दोनों का नाश होता है। साथ ही समाज और समस्त संसार की क्रान्ति को भी खतरा पैदा हो जाता है। इसलिए शान्ति की आवश्यकता जितनी दूसरे लोगों को है, उतनी ही साम्यवादियों को है और जितनी क्रान्ति की आवश्यकता साम्यवादियों को है, उतनी ही दूसरे लोगों को भी है। अब शान्ति के बिना क्रांति सम्भव नहीं है। क्रान्ति के बिना शान्ति भी स्थिर नहीं होगी। अब तो शान्तिमय क्रान्ति करनेवाले ही टिक सकेंगे। शान्तिमय क्रान्ति का आश्वासन देनेवाला जो विचार है, उसीका नाम है सर्वोदय।

समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, राज्यवाद आदि कोई भी आज शान्तिमय क्रांति का वचन नहीं दे रहे हैं। इस समय जो शान्ति का वचन देंगे, वे क्रांति का वचन नहीं देंगे और जो क्रांति का वचन देंगे, वे शान्ति का वचन नहीं देंगे। अब दोनों के समन्वित वचन दिये बिना समाज में प्रगति नहीं होगी और न दोनों का ही चलेगा। इसीलिए कांग्रेसवाले जो शान्तिवादी थे, वे समाजवाद का दावा कर रहे हैं तथा साम्यवादी जो क्रांतिवादी थे, वे शान्तिमय साधनों की उपयोगिता स्वीकार कर रहे हैं। कैसा मजा है? यह ठगने की बात नहीं है। यह जमाने का तकाजा है। जमाने ने विपरीत दिशा में अग्रसर होनेवालों को आमने-सामने खड़ा कर दिया है। अब शान्तिवादी क्रान्ति को कड़वी दवा समझकर लें या क्रांतिवादी शान्ति को कड़वी दवा समझकर लें—लेनी तो होगी ही। बिना लिये अब कदम नहीं चल सकते। आगे बढ़ना है तो एक-दूसरे पर विश्वास रखना ही पड़ेगा।

पुराना मन अविश्वास पैदा करता है। वह अवैज्ञानिक है। अब काम नहीं दे सकता है। अतः वर्तमान में ऐसे मन की जरूरत है, जो सामनेवालों पर विश्वास रखने का साहस कर सके। एक-दूसरे पर सशंकित बने रहना पुराने जमाने का चिह्न है। विज्ञान युग में वह नहीं चलेगा। इसमें तो 'कोल्डवार' या 'हॉट-पीस' ही चलेगी।

रशिया बोलता है कि हम इन भयानक औजारों का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो अमेरिका कहता है कि इसके पीछे अवश्य ही दाल में काला है। अमेरिका की बात को रशिया गलत मानता है। इस प्रकार पारस्परिक अविश्वास करते रहने से मानव जाति का सर्वनाश हो जायगा। हमें मनुष्य जाति को बचाना है तो मानव मन से ऊपर उठना होगा और आज जो राजनीति को सर्वोपरि स्थान दे रहा है, उसे भी पदच्युत करना होगा। अब राजनीतिज्ञों से दुनिया के मसले हल होनेवाले नहीं हैं।

आध्यात्मिक और भौतिक आवश्यकताओं का मेल

'वैर से वैर नहीं मिटता है, अवैर से वैर मिटता है'। बुद्ध के इस सन्देश की दुनिया को अत्यन्त आवश्यकता है। ईसा मसीह का सन्देश, गान्धीजी का सन्देश एवं अन्य सन्तों के सन्देश केवल आध्यात्मिक कारणों से ही नहीं, बल्कि आधिभौतिक कारणों से भी आज जरूरी हैं। मानव समाज की आध्यात्मिक आवश्यकता और भौतिक आवश्यकता दोनों मिल गयी हैं।

भारतीय आत्मज्ञान कहता है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। सारी दुनिया एक कुटुम्ब है, सभी मानव एक परिवार के हैं। विज्ञान भी आज 'वन वर्ल्ड' की बात कह रहा है। ऐसी हालत में अब पुराना मन नहीं चल सकता, पुरानी राजनीति भी नहीं चल सकती। इसलिए अब पुराने लोगों के पीछे चलने से भी काम नहीं चलेगा। पुराने लोगों के पीछे चलेंगे तो खतरा पैदा होगा। इस वास्ते नौजवानों को नवीन मार्ग ढूँढ़ना चाहिए। पुराने जमाने के तौर-तरीके अब नहीं चलेंगे। भगवान रामचन्द्र ने धनुष-बाण चलाया तो कृष्ण ने बाँसुरी बजायी। गोकुल में धनुष-बाण काम नहीं दे सकता था। उन्होंने नया ही औजार हाथ में लिया। उसी औजार के बल पर स्त्री-पुरुषों तथा ऊँच-नीच परक भेदों को मिटाने में वे कामयाब रहे। गौतम बुद्ध ने न धनुष-बाण चलाया, न बाँसुरी ही बजायी। उन्होंने समाधि के अधिष्ठान पर करुणा व ज्ञान-प्रचार का मार्ग स्वीकार किया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि पुराना औजार लेकर नया अवतार नहीं हो सकता। नया अवतार, नया औजार चाहिए। ऋग्वेद में लिखा है: 'अचिंतम् ब्रह्म जुजुषुः युवानः'।

जिस ब्रह्म का चिंतन पहले किसीने नहीं किया हो, जवानों को उसी ब्रह्म का चिंतन करना अच्छा लगता है। पुरानी समाजरचना कायम रखकर जवान लोग उसीके पीछे चलेंगे तो बिलकुल निकम्मे साबित होंगे। इसीलिए जवानों का फर्ज है कि शान्तिमय क्रांति को समझें।

अन्तर्राष्ट्रीय भूदान

जमीन की मालकियत रखना पाप है। जमीन परमेश्वर की है। इस हालत में आप सीलिंग करें या न करें, जमीन पर वैयक्तिक अधिकार बताना व्यर्थ है। सीलिंग की बात भी अब बीते युग की हो गयी है। नये जमाने में तो दुनिया की कुछ जमीन पर कुल इन्सानों का अधिकार है। अब आस्ट्रेलिया की जमीन पर सिर्फ आस्ट्रेलिया के लोग रहें, यह गलत है। उस जमीन पर जापानवालों का भी हक है। आज आस्ट्रेलिया में जितने लोग हैं, उनसे पाँच-छह गुना अधिक लोग वहाँ रह सकते हैं। फिर क्या कारण है कि जापानवाले जिनके पास की जमीन बहुत कम है, आस्ट्रेलिया की जमीन पर बसने के अधिकारों से वंचित किये जायँ?

आज हिन्दुस्तान का नागरिक एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आ-जा सकता है, बस सकता है, व्यापार कर सकता है। किसी-को भी पासपोर्ट की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही दुनिया के हर मनुष्य को प्रेम के लिए, व्यवसाय के लिए या सेवा के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाने की पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।

किसीको लगेगा कि मैं बहुत दूर की बात कह रहा हूँ, लेकिन यह दूर की बात नहीं है, बहुत ही नजदीक की बात है। विज्ञान युग की बात है। अब छोटे-छोटे मसले नहीं रह सकते। इन दिनों जो सवाल उठेंगे, वे सभी अन्तर्राष्ट्रीय होंगे। गोवा का ही उदाहरण लीजिये। पुराने जमाने में यह मसला होता तो किसीको खबर पड़ने से पूर्व ही हम निपट लेते, किन्तु आज यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। एक जमाने में इंग्लैण्ड ने भारत को हजम कर लिया था, फिर भी दुनिया के किसी कोने से उसके लिए विरोध की आवाज नहीं उठाई गयी! आज इंग्लैण्ड की सरकार ने ईजिप्ट पर हमला करने का इरादा किया ही था कि इंग्लैंड की जनता ही विरोध करने पर उतर आयी। वहाँ विरोध में कितने प्रोसेशन निकले? यह क्या हो रहा है?

शाकुन्तल में कालिदास ने वर्णन किया है कि महाराज दुष्यन्त शिकार के लिए जा रहे थे। रास्ते में आश्रम था। आश्रम में इधर-उधर मृग घूम रहे थे। शिकारी वेश में राजा को देखकर सभी मृग भयाकुल होकर भागने लगे तो आश्रम का एक लड़का आकर राजा से कहने लगा 'आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः' आश्रम के मृगों को आप नहीं मार सकते हैं। बच्चे की आवाज से दुष्यन्त को रुक जाना पड़ा। वही हाल इंग्लैण्ड वालों का हुआ। इंग्लैण्डवालों ने सरकार के विरुद्ध प्रोसोशन निकाले और हल्ला मचाया कि ईजिप्ट पर आक्रमण करना गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए तो इंग्लैण्ड को रुक जाना पड़ा।

'ब्रिटेन की सत्ता समुद्र पर भी है, इस राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता। जहाँ-जहाँ सूर्य की किरणें पहुँचती हैं, वहाँ-वहाँ ब्रिटिश साम्राज्य मौजूद है।' ऐसे जो लोग अपने गौरव-गीत गाते थे, आज वे ही गौरव-गीत को गानेवाले लोग लोकाधीन हो गये हैं। यह विज्ञान-युग का प्रभाव है। अभी कुल दुनिया एक है। इस प्रकार की अन्तर्भावना दुनिया में पैदा हो रही है, हमारे 'जय-जगत' का उद्घोष उसी तथ्य की अभिव्यक्ति है। विदेशी लोग हमारी यात्रा में आते हैं और अपने यहाँ बच्चे-बच्चे को 'जय-जगत' बोलते देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। वे सोचने लग जाते हैं कि यहाँके लोग कितने प्रगतिशील हैं?

प्राचीन युग में 'प्रांतों की जय' और जातियों की जय बोली जाती थी। 'रोमन-साम्राज्य' का क्या हुआ? रोम की ही भाँति अपने-अपने प्रांत, धर्म और राज्य तथा उसका अभिमान रखने-वाले लोग चले गये। यहूदी अपने आपको सारी दुनिया में परमेश्वर के पसंद किये हुए लोग मानते थे। संसार में सर्व-श्रेष्ठता और ज्ञान-प्रचार का दावा ब्राह्मणों ने कम नहीं किया। पर आज वे सब कहाँ हैं?

जाति-परम्परा के गुण-दोष

भारत का इतिहास उदारता का इतिहास रहा है। यहाँ पारसी आये तो उनका स्वागत हुआ, यहूदी आये तो उनका स्वागत हुआ और मुसलमान आये तो उनका भी स्वागत हुआ। (हमलावर मुसलमान आये, इससे पूर्व फकीर लोग हिन्दुस्तान में आ गये थे, ऐसा माना जाता है।) ईसाई लोग हिन्दुस्तान में २००-४०० वर्ष पहले आये हैं, यह मानना ठीक नहीं है। सन् १८५० में सर्वप्रथम सेण्ट टॉमस नामक मिशनरी मलबार के किनारे आये थे। तब वे अपने चर्च में 'मेरी देवता' रखते थे। हिन्दुस्तान के लोगों ने समझा कि यह अपनी पार्वती ही है। लक्ष्मी, दुर्गा आदि की तरह यह 'माता मेरी' है। तभीसे लोग चर्च को गिरजाघर कहते हैं। केरल में एक ईसाई भाई बहुत गम्भीरता से कहने लगे कि यह 'कन्याकुमारी' नहीं, कन्यका मेरी है। मेरीयम ईसामसीह की माँ कुमारी थी। कुमारी को ही ईसारूपी पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। इसपर मैंने कहा कि यह तेरी भी है और मेरी भी है। इसलिए हमारी कहना ही शुरू कर दो। कहने का आशय यह है कि यहाँ ईसाईयों का भी स्वागत हुआ है।

हिन्दुस्तान में एक जमात अबीसीनिया से आयी तो दूसरी जमात अन्य किसी स्थान से आयी। अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग तरह के लोग आये, फिर भी यहाँ सभी एक साथ रहे। सहअस्तित्व के सिद्धान्त पर रहे। याने तुम भी रहो, हम भी रहें। हमारा खाना-पीना अलग, तुम्हारा खाना-पीना अलग, इस तरह सहअस्तित्व में से ही जातिभेद प्रगट हुआ। वह अब हमें तकलीफ दे रहा है। वर्तमान में उसकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। अब उसे नष्ट कर देना चाहिए। पौधा जब छोटा होता है तो उसके संरक्षण के लिए चारों ओर बाड़ लगाते हैं, किन्तु जब वह वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, तब वही बाड़ उसके विकास के लिए बाधा बन जाती है और उसे हटाना अनिवार्य हो जाता है। इसी तरह जो-जो लोग यहाँ आये, एक ही जगह रहे, परन्तु अलग-अलग हिस्सों में रहे। इससे जातीय भेद बना। आज वह बिलकुल निरुपयोगी हो गया है। पुराना हो गया है। पुराना अंश ही जब-तब बोलता है कि 'संयुक्त महाराष्ट्र की जय' आबू गुजरात में रहे या राजस्थान में। एक कहता है कि गुजरात में रहे, दूसरा कहता है राजस्थान में। यह तीन साल पहले की बात है। हम तो कहेंगे कि आबू हिन्दुस्तान का है, सारी दुनिया का है। हिन्दुस्तान और सारी दुनिया की बात करते समय बीच-बीच में भाषा और प्रान्त के झगड़े सुनायी देते हैं। उसे मैं नृसिंह अवतार कहता हूँ। नृसिंहावतार के पहले मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतार हो गये। फिर मानव और जानवरों को जोड़ने-वाला नृसिंह अवतार हुआ। उसमें पुराने अवतारों के अवशेष सिंह के रूप में तथा नये अवतारों के प्रतीक नर के रूप में प्रकट हुए। आधा नर और आधा जानवर।

आज का अवतार नृसिंह-अवतार है। उसमें पुराना जान-वर तथा नया मानव दोनों मौजूद हैं। इसलिए शान्तिवादियों के मन में क्रान्ति की बातें आ रही हैं और क्रान्तिवादियों के मन में शान्ति की। दोनों बातों को व्यवस्थित रूप से सर्वोदय-विचार आपके सामने प्रस्तुत कर रहा है। सर्वोदय वशिष्ठ ऋषि के आश्रम जैसा है। वशिष्ठ के आश्रम में शेर और गाय एक घाट पानी पीते थे। पानी सिंह और गाय का भेद नहीं करता। दोनों की समान रूप से तृप्ति करता है। यही स्थिति सर्वोदय की है। कांग्रेस, कम्युनिस्ट आदि सभी सर्वोदय को स्वीकार करेंगे।

विश्वास की अजेय शक्ति

विज्ञान-युग की सबसे प्रधान शक्ति विश्वास है। अब विश्वास के साथ काम करना चाहिए। अविश्वास रखकर कोई काम नहीं किया जा सकता। हथियारों का मुकाबला हथियारों से नहीं होगा। दूसरे के हृदय में प्रवेश कर विश्वासपूर्वक ही हम दूसरों को बदल सकेंगे।

अभी श्रीमालीजी कह रहे थे कि वे बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में गये थे। वहाँके नौजवान विद्यार्थियों ने उनका भाषण नहीं सुना। यह जो भाषण न सुनने की बात है, वह बीते युग की बात है। इस समय तो सामनेवाले का विचार सुनना लाजमी मानना चाहिए। शान्ति से सुनना, पसन्द आये तो मानना अन्यथा न मानना, यह अपने ऊपर निर्भर करता है। दिमाग पर विचार का हमला करना तथा विश्वासपूर्वक हृदय में प्रवेश करना ही इस युग का सही रास्ता है।

महाभारत का किस्सा है कि धर्मराज पितामह भीष्म से मिलने के लिए गये, साथ में किसीको नहीं ले गये। सब लोग आश्चर्य-चकित नेत्रों से उन्हें ताकते रह गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने श्रद्धापूर्वक पितामह को प्रणाम किया। 'चिरायुर्भव' कहकर भीष्म ने धर्मराज को आशीर्वाद दिया। धर्मराज ने कहा कि पितामह मैं आपसे एक सवाल करने आया हूँ। 'तुम प्रातःकाल ठीक समय पर आये हो, विनय का व्यवहार कर रहे हो, इसलिए मैं तुमपर पूर्ण संतुष्ट हूँ। तुम जो चाहो, पूछ सकते हो।' पितामह के इस तरह कहने पर धर्मराज ने पूछा कि 'दादा, आपकी मौत किस तरह होगी, यही बताइये'।

धर्मराज प्रेमपूर्वक भीष्म से मौत का रास्ता पूछ रहा है! यह है विश्वास-शक्ति! पुराने लोगों के प्रति अत्यन्त आदर रखते हुए हमें उनको खत्म करने की बात सीखनी है। पुराने लोगों को खत्म करने का जो तरीका धर्मराज ने अपनाया, वह जवानों को समझना चाहिए। विचार और विश्वास ही हमारे कार्य के आधार हैं। इसी आधार पर अब जवानों को दो बातें करनी होंगी। एक तो अपना विचार मजबूत बनाना और दूसरा पुरातन में से सत्य लेना एवं असत्य का परिहार करना!

नया समाज, नया औजार

पुरानी बात है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघवालों ने हनुमान-जयंती के अवसर पर मुझे अखाड़े में निमंत्रित किया। मैंने वहाँ पहुँचना स्वीकार किया। इसपर हमारे मित्रों ने आपत्ति भी की। लेकिन मुझे आपत्ति जैसा कोई कारण न लगा। मैं उनके यहाँ गया। मैंने उनके सामने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि तुम लोग अखाड़े में एकत्रित होते हो, लेकिन चार-चार आने का टिकट क्यों लगाते हो? बच्चों से एक-एक घंटा परिश्रम करवाते हो तो उनसे चार आने लेने चाहिए या चार आने देने चाहिए? यहाँ शरीर-परिश्रम में ऊठबैठ करवाते हो और मिट्टी रगड़ते हो, इसकी अपेक्षा कहीं बगीचा लगाओ तो बच्चे वहाँ और परिश्रम करेंगे, मारुति की प्रार्थना करेंगे और आठ-दस आने का उत्पादन भी कर लेंगे। ऐसी योजना बनाओ, ताकि गरीबों के बच्चे भी लाभान्वित हो सकें। आज अपने देश को व्यायाम की ही जरूरत नहीं, अन्न की भी जरूरत है। यह ठीक है कि शहरों में बैठे-बैठे शरीर मोटे हो जाते हैं तो उन्हें ऊठबैठ करवाकर व्यायाम करवाने से शरीर हल्का हो सकेगा, परन्तु व्यायाम के बाद अगर काम की योजना हो तो गरीब भी सम्मिलित होंगे। नये समाज को नया औजार चाहिए।

शान्ति-सेना का स्वरूप-दर्शन

नये औजार का इस्तेमाल करने की कला भी सीखनी होगी। इसके लिए गाँव-गाँव में लोग पहुँचेंगे। उन्हें हम शान्ति-सैनिक कहते हैं। अभी शान्ति-सेना के संगठन का काम चल रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि शान्ति और सेना दोनों का सहयोग तो बड़ा विचित्र लगता है! शांति के साथ सेना शब्द चुभता है और सेना के साथ शान्ति शब्द खटकता है। हम कहना चाहते हैं कि शान्ति और सेना दोनों योग्य हैं। पुरानी जो सेना थी, उसमें शान्ति कहाँ थी? शान्ति थी ब्राह्मणों के पास। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः यानी लड्डू, लड्डू, लड्डू थे। सेना के पास बम गोले थे, तथा ब्राह्मणों के पास लड्डू।

मैं विहार में घूम रहा था। मेरी यात्रा वैद्यनाथधाम की तरफ जा रही थी। उस समय वैद्यनाथधाम के भक्त मेरे पास आते थे और कहते थे कि 'बम भोलानाथ, बम भोलानाथ'। मैं उनसे कहता था कि तुम बम भोलानाथ बम भोलानाथ, बोल तो रहे हो, लेकिन कुछ समझते हो कि दुनिया की आज क्या माँग है? आज बम तो अमेरिका में हैं और भोलानाथ हिन्दुस्तान में! इस तरह बम भोलानाथ का बँटवारा हो गया है। तुम सचमुच में भोले बन सकते हो क्या? क्या जान-बूझकर, सामनेवाले पर विश्वास रखने की हिम्मत है? यह नहीं कि मूर्ख बनकर, सामनेवाले पर विश्वास रखना है। जान-बूझकर सामनेवाले पर विश्वास रखने की हिम्मत आनी चाहिए। फिर चाहे वह छुरी लेकर आया हो तो भी उसकी गोद में सोने की तैयारी होनी चाहिए और कहना चाहिए कि अगर तुम्हारी हिम्मत है तो चलाओ छुरी मेरी गरदन पर। मेरी हिम्मत है, तुम्हारी गोद में सोने की, इस तरह की हिम्मत नौजवानों में आनी चाहिए। इसीको कहते हैं भोलानाथ। शांतिसेना में बम और भोलानाथ दोनों इकट्ठे हो जाते हैं। शान्ति और सेना दोनों मिलकर शांतिसेना होती है।

शांतिसेना का मुख्य उसूल यह है कि हम निष्पक्ष, निर्वैर और निर्भय बनेंगे। हम परस्पर विश्वास रखेंगे। हम किसीसे डरेंगे नहीं, किसीको डरायेंगे नहीं, हम किसीको दुश्मन नहीं मानेंगे, हमारा दिल प्रेम से भरा हुआ रहेगा, यह है शान्ति-सैनिक की प्रतिज्ञा। ऐसे शान्ति-सैनिक अगर उदयपुर में नहीं मिलेंगे तो राणाप्रताप क्या कहेंगे?

ग्रामदान में हम मालिकी मिटाना जरूर चाहते हैं। परन्तु वह प्रेमपूर्वक मिटे, यही हमारी कोशिश है। जब तक वह नहीं मिटती है, तब तक आपका बाल भी बाँका न हो, उसकी जिम्मेवारी हम लेते हैं। अगर आपकी जान जोखिम में है तो हम प्रेमपूर्वक अपनी जिन्दगी अर्पण करने के लिए तैयार रहेंगे। इस तरह का विश्वास अगर मालिकों को हो जाय तो ग्रामदान के लिए अनुकूलता हो जायगी। इसलिए आप समझ लीजिये कि शांतिसेना के बिना ग्रामदान नहीं होगा और ग्रामदान के बिना शांतिसेना नहीं होगी।

यह अजीब-सी बात है कि इसमें दोनों इकट्ठे हो जाते हैं। सर्वोदय में दोनों परस्पर विरोधी बातें भी इकट्ठी हो जाती हैं। स्त्री का पुरुष होता है और पुरुष का स्त्री होता है। तुम घबड़ाओ मत। शिक्षितों से मजदूर बनाने की बात और मजदूरों से शिक्षित बनाने की बात है, नगरों का ग्रामीकरण और ग्रामों का नगरीकरण करने की बात है। यह तो हमारा धंधा है। परस्पर विरोधी दुनिया में जो विरोध शक्ति है, उसको अविरोधपूर्वक काम में लगाना, यही विज्ञान युग में काम आयेगा। यह सारी विद्या शान्तिसैनिक को सीखनी चाहिए। तो मैं चाहता हूँ कि आप लोग उसमें शरीक हो जायँ और अगर आपको यह विचार पसंद है तो सक्रिय सम्मति के तौर पर मुझे एक मुट्ठी-भर अनाज रोज चाहिए। शान्तिसेना के लिए लोक-सम्मति की जरूरत है, इसलिए हर घर में सर्वोदय-पात्र रखना चाहिए।

मैं तो पंचवर्षीय योजना की भाषा में बात करता हूँ। अगली पंचवर्षीय योजना में इतने-इतने जॉब्स हम देनेवाले हैं तो उसमें इतने-इतने बेकारों को काम मिलेगा, इतने-इतने शिक्षक बनेंगे तो

इतनी बेकारी दूर होगी, यानी शिक्षक बनाना बेकारी-निवारण का जरिया हो गया तो हम भी शांतिसेना के जरिये ७५ हजार लोगों को काम देना चाहते हैं। हम कहते हैं कि 'हे बेकारो, आ जाओ। जो बेकार हैं, किसी काम में, किसी धंधे में या किसी नौकरी में या किसी पक्ष में फँसे हुए नहीं हैं, जो अनासक्त हैं, ऐसे मुक्तात्मा बेकार लोग हमारी शांतिसेना में आ जायँ।' पंचवर्षीय योजना में दस-बीस लाख लोगों को नौकरी मिलती होगी तो हम कम-से-कम ७५ हजार लोगों को दे सकेंगे, यह मेरी महत्त्वाकांक्षा है। इसलिए ५ हजार मनुष्यों के बीच एक शांतिसैनिक हो। दूसरा, शांतिसेना की सम्मति के तौर पर हर घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय और तीसरा ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य का कार्यक्रम माना जाय। इस तरह हमें आगे बढ़ना है। स्वराज्य के लिए हमने पूरा त्याग किया, वैसे ही ग्राम-स्वराज्य के लिए भी हमें तैयार होना पड़ेगा। ग्राम-स्वराज्य के पीछे जिस विचार की पृष्ठभूमि है, वह मैंने आपके सामने दिल खोल करके रखी है।

मेरा मन रोता है

स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे देश में गरीबी है, अभाव है, आलस्य है और अशिक्षा है। उदयपुर जैसे शहर में विद्यालय हैं, उच्च विद्यालय हैं एवं विश्वविद्यालय है। फिर भी वस्तुस्थिति यह है कि यहाँके निकटवर्ती गाँवों के लोग अभी तक राष्ट्रपिता का नाम तक नहीं जानते हैं! यह देखकर मेरा दिल रोता है। इसलिए शांतिसेना बनेगी। जगह-जगह ज्ञान पहुँचाने का काम वह करेगी और ऐसा जब होगा, तब राणाप्रताप के उदयपुर ने उस प्रताप का काम किया, ऐसा माना जायगा। ●●●

ईडर (साबरकाँठा) ८-१-'५९

प्रार्थना-प्रवचन

विज्ञान के आधार पर जीवन-दृष्टि का विकास करें

भारत को स्वतंत्र हुए दस वर्ष हो गये। दस वर्षों का समय विज्ञान-युग में थोड़ा नहीं होता है। इन वर्षों में अनेकों उदात्त कल्पनाएँ, ऊँची आकाक्षाएँ और नयी योजनाएँ पैदा हुई हैं। संभव है कि यही बात सारी दुनिया में चलती होगी। इसलिए दस वर्ष पहले के नेताओं में अब नेतृत्व करने की क्षमता नहीं रह गयी है। आनेवाले युग में नेता ही न रहेंगे। यह बात नहीं कि पुराने जमाने के नेताओं के स्थान पर नये जमाने के बन जायँगे, बल्कि आगामी युग ही नेतृ-विहीन युग होगा।

नेतृत्व व्यक्ति से नहीं, गुणों से मिलेगा

बात यह है कि नेताओं से दो बातें प्राप्त होती हैं: (१) विशेष प्रकार का मार्ग-दर्शन और (२) अनुशासित जीवन। ये दोनों लाभ ऐसे हैं, जिनके बिना किसी भी समाज का काम नहीं चल सकता। किन्तु आगामी युग में उत्तरोत्तर इन दो लाभों के लिए नेताओं को कष्ट देने की जरूरत नहीं रहेगी। इसे समझने के लिए हमें विज्ञान-युग का स्वरूप समझ लेना होगा। लोगों को यह खयाल ही नहीं है कि विज्ञान-युग अपने साथ क्या-क्या लिये आता है?

विज्ञान-युग में मानव को अन्न की भूख की अपेक्षा ज्ञान की भूख अधिक रहेगी। याने इस युग में लोग भूखे रहना स्वीकार लेंगे, किन्तु ज्ञानहीन अवस्था में रहना अस्वीकार करेंगे। गीता में जो यह कहा है कि 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' (ज्ञान जैसी दूसरी पवित्र वस्तु दुनिया में कोई नहीं है) वह आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों पर लागू होता है। जहाँ आत्मज्ञान मानव को भीतर से पवित्र करता है, वहीं विज्ञान उसे बाहर से पवित्र करता है। दोनों मिलकर मानव को परिपूर्ण पवित्र करते हैं।

वर्तमान में नेता लोग नेतृत्व से अपने अनुयायियों को जो दिया करते हैं, वह उन्हें ज्ञान-विज्ञान से ही प्राप्त हो जायगा। याने अब इस युग में लोग एक साथ रहकर समाज या समूह के रूप में काम करते रहेंगे तो एक मानव के गुणों में जितनी कमी होगी, उसकी पूर्ति दूसरे लोग कर देंगे। इस तरह लोग इकट्ठे होंगे तो वहाँ गुण-समुच्चय होगा और वे गुण ही नेता का काम करेंगे।

आखिर अमुक का नेतृत्व होने का अर्थ क्या है? ईश्वर की योजना में एक आदमी में एक गुण होता है तो दूसरे में दूसरा! हरएक में सभी गुण नहीं होते। न कोई सर्वथा गुणविहीन ही होते हैं। किन्तु कोई एक ऐसा व्यक्ति निकल आता है, जिसमें ज्ञान, सत्यनिष्ठा, उद्योगशीलता, व्यापक बुद्धि आदि दस-पाँच गुण एक साथ रह सकते हैं। फिर वही औरों का नेतृत्व करता है। नेता याने अनेक गुणों का समुच्चय! लेकिन नये युग में लोग ज्ञान-विज्ञान के कारण अकेले रहना पसन्द न करेंगे। २५-५० का समूह बनाकर ही रहेंगे और इस तरह अनेक गुणों का समुच्चय ही उस समय नेतृत्व का काम करेगा। किसी जमाने में भगवान बुद्ध को घूम-घूमकर नेतृत्व करना पड़ा, लेकिन अब उनका 'संघ' ही नेतृत्व का काम करेगा। मुझे विश्वास है कि यह देखकर उन्हें सन्तोष ही होगा कि मुझे जो इसके लिए कष्ट उठाना पड़ा, अब दूसरों को नहीं उठाना पड़ रहा है। उस जमाने में जो आकांक्षा पूरी नहीं हुई, वह इस जमाने में होगी।

'वर्ड्सवर्थ' ने अपने स्मारक के विषय में कविता लिखी है। वह कहता है कि 'मैं जिस गाँव में रहता था, वहाँ एक छोटा-सा पहाड़ था। उसमें काफी पत्थर थे। उन पत्थरों में से बहुत से अच्छे-सच्चे पत्थर लोग उठा ले जाते और उनसे चक्की आदि बनाते थे। लेकिन मैंने एक ऐसा पत्थर देख लिया, जिसमें किसी भी तरह का आकर्षण नहीं था और न कोई उसे उठाकर ले ही जाता था। वही मेरा स्मारक पत्थर माना जाय और उसपर लिख दिया जाय कि 'अनेक में से एक'

नाम का कुछ भी मूल्य नहीं याने उसपर नाम लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल इतना ही लिख दें कि 'अनेक में से एक हूँ' तो वह लोगों के लिए उत्साहजनक हो जायगा।'

आखिर कवि की इस आकांक्षा का अर्थ क्या है? वह चाहता है कि लोग बड़े न बनें, नेता न बनें। कहा जाता है कि 'अमुक व्यक्ति अत्यधिक कार्यशील है। जैसे पण्डित नेहरू! वे दिनभर काम करते हैं, अपने देश के लिए उद्योग करते हैं, देश की सेवा करते हैं,' आदि-आदि। किन्तु इस तरह किसी एक की बढ़-बढ़कर प्रशंसा करने का अर्थ ही है, दूसरों की निन्दा। यह कहा जाय कि 'अमुक व्यक्ति नेक या प्रामाणिक है' तो अर्थतः शेष लोग अप्रामाणिक ही कहे जाते हैं। लेकिन जब सारा समाज ही प्रामाणिक होगा तो फिर किसीका बखान किया जायगा? आज नेताओं की स्तुति की जाती है तो अर्थतः अनुयायियों की निन्दा ही हो जाती है। विज्ञान-युग में जब ज्ञान-विज्ञान हरएक के पास पहुँच जायगा तो आज उनमें जितने कम गुण दीखते हैं, उतने ही अधिक दीखेंगे। एक-एक व्यक्ति में गुण समुच्चय होगा और फिर लोग एक होकर काम करना सीखेंगे। विज्ञान-युग में

अलग-अलग काम करना संभव ही नहीं होगा। समाज रूप में ही काम होगा और उसमें गुणों की कमी नहीं रहेगी। फिर नेता लोग मिट जायँगे और वर्ड्सवर्थ की तरह लोग 'अनेक में से एक' बनेंगे।

भगवान कृष्ण भी ऐसे ही 'अनेक में से एक' थे। ग्वाल-बाल उन्हें 'अपने में से ही एक' मानते थे। इतने बड़े भगवान को अर्जुन ने अपने घोड़ों का कोचवान बनाया और उनसे घोड़े की सेवा करवायी, इसका कारण भी यही था कि वे अनेक में से एक थे, अपनों में से एक थे। इसलिए विज्ञान युग में नेताओं की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी और मानव संघरूप में ही काम करेंगे। यह नये युग की आगाही है और है नये युग का चिह्न। अब नया युग आ रहा है। तब क्या आप भी नये युग की तैयारी करेंगे या पुराने युग की यह भाषा ही बोलते रहेंगे कि 'हमें नेताओं की जरूरत है, नेताओं के बिना हमें उत्साह और प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। सरदार पटेल थे तो हमें उत्साह मिलता था?' यह युग सरदार पटेल का नहीं रहा। यह गांधीजी का भी युग नहीं और न गौतम बुद्ध का ही युग है। यह तो संघ का ही युग आ रहा है!

ज्ञान का वितरण करें

मैं आप लोगों को गुणवान बनाने के लिए ही यह व्याख्यान दे रहा हूँ। आप सभी गुणवान बनें और २५-५० इकट्ठे होकर खुद ही नेता बन जायँ। यदि सभी एक होकर ज्ञान-विज्ञान का काम करेंगे तो एक-एक समूह नेता का काम करेगा। आज जगह-जगह यही सुनने में आता है कि हमारे यहाँ स्कूल खोलिये। आखिर यह किस बात का निर्देश है? स्पष्ट है कि आज सबको ज्ञान-विज्ञान की बेहद भूख है। इसलिए आप सब मिलकर काम करें और ज्ञान-विज्ञान को बढ़ायें। आप लोगों को ज्ञान-विज्ञान की खैरात बाँटनी चाहिए। आज अमुक व्यक्ति के पास ज्ञान है, वे सारे समाज की योजना किया करते हैं। इसके बदले ये समाज को ज्ञान क्यों नहीं बाँटते। ज्ञान का वितरण क्यों नहीं करते? यह सारा चिन्तन का विषय है। आज वितरण और विभाजन की बातें चलती हैं। लेकिन ज्ञान का वितरण और विभाजन क्यों नहीं किया जाता? अन्न और धन का विभाजन तो होना ही चाहिए, लेकिन ज्ञान-विज्ञान का वितरण उससे भी महत्त्व का है, जिसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। गाँव-गाँव, घर-घर में ज्ञान का वितरण होना चाहिए।

बहुत से लोग कहा करते हैं कि 'साइन्स' (विज्ञान) के लिए तो अंग्रेजी की जरूरत है ही, अतः उसे सबको सीखना चाहिए। लेकिन यह कितनी बेतुकी बात है कि विज्ञान जैसा महत्त्वपूर्ण विषय अंग्रेजी सीखने के बाद ही सीखा जा सकता है! फिर तो विज्ञान व्यक्ति विशेष के ही हाथ में रहेगा। उसका वितरण ही न होगा। आज यदि भक्तिमार्ग द्वारा सन्त लोग आत्मज्ञान को संस्कृत से अपनी-अपनी भाषा (हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, तमिल आदि) में न लाते तो साधारण जनता को उन मन्त्रों के उच्चारण में कितनी कठिनाई होती और उन्हें मुक्ति भी कैसे मिल पाती? जिस तरह मातृभाषा के माध्यम से भक्ति मार्ग द्वारा आत्म-ज्ञान का सारी दुनिया में विस्तार हो गया, उसी तरह विज्ञान को भी मातृ-भाषा में लाना होगा। माता बच्चे को अपने दूध के साथ ज्ञान और विज्ञान भी सिखलायेगी, तभी वे खड़े होंगे और तभी गाँव-गाँव स्वावलम्बी होगा।

दवा के लिए दवाखाना खोलने या शिक्षकों की बेकारी के लिए नये स्कूल खोलने से काम न चलेगा। उससे तो बेकारों का एक कारखाना ही खुल जायगा। इसी तरह रास्ते बनाने या सेना खड़ी करने से क्या लोगों में उद्योगशीलता या निर्भयता आ सकती है? स्पष्ट है कि सरकार निर्भयता बढ़ाने की योजना नहीं कर सकती। वह जिज्ञासा वृत्ति बढ़ाने की योजना नहीं कर सकती। भले ही वह बहुत-से कॉलेज खोल दे। सरकार पुस्तकालय की योजना कर सकती है, पर उसमें रखी हुई पुस्तकों के पढ़ने की योजना नहीं कर सकती।

एक जगह मुझे लोग एक पुस्तकालय में ले जा रहे थे। मैंने विनोद में कहा कि 'भाई! मैं वहाँ नहीं चल सकता, क्योंकि मेरे पास चाकू नहीं है।' लोग आश्चर्य में पड़ गये कि पुस्तकालय में चाकू से क्या सम्बन्ध है? मैंने बताया कि मैं बहुत से पुस्तकालयों में गया तो मुझे यही अनुभव आया कि अच्छी-अच्छी पुस्तकों के पृष्ठ ही नहीं फाड़े (खुले) गये थे और फालतू पुस्तकें अधिक पढ़ने से बुरी तरह फट-फुट गयी थीं। मैं उन चिपके हुए पन्नों को चाकू से न काटकर हाथ से काटता तो ग्रन्थ फटने का भय था और न काटता तो ठीक से पढ़ नहीं पाता था।

सरकार भले ही पञ्चवर्षीय योजना करे या दशवर्षीय, वह गुणसंवर्धन की योजना नहीं कर सकती। गुणसंवर्धन की योजना हो और उसके साथ वह पुस्तकालय आदि की योजना भी हो तो दोनों मिलकर ज्ञान-विज्ञान हो सकता है। पुस्तकालय आदि जड़ पदार्थ खड़े कर देने का यह अर्थ नहीं कि उनके उपयोग की वृत्ति भी पैदा हो ही जायगी। बहुत ही अच्छा रास्ता बना हो, लेकिन लोगों को मुसाफिरी की प्रवृत्ति ही न हो तो वह व्यर्थ हो जायगा। अतः इन सभी गुणों की प्रेरणा लोक-जीवन में आनी चाहिए।

अपनी योजना आप करें

लोग अपनी शक्ति और अपनी योजना से एकत्र होकर स्वयं यह निश्चय करें कि 'इस गाँव में ज्ञानवृद्धि करनी है, हम अपने गाँव का उत्पादन बढ़ायेंगे, किसीका भी दुःख हमारा ही दुःख होगा और कोई भी सुख या दुःख होगा, उसे हम बाँट लेंगे, गाँव की सारी योजना हम लोग स्वयं कर लेंगे, हम सरकार पर निर्भर न रहेंगे।'

हिंदुस्तान में अभी सीलिंग की बात चलती है, परन्तु सीलिंग से कुछ होनेवाला नहीं है। लोगों की समस्याएँ तो जमीन जब सारे गाँव की होगी, तभी मिटेगी। अतः ग्रामदानी गाँवों में सबको मिलकर समाधानपूर्वक गाँव की योजना करनी चाहिए। मैंने इसके लिए एक सूत्र तैयार किया है। 'साम्यं समाधानम्।' आप सारे गाँव का समाधान करो।

अभी स्वराज्य का पार्सल दिल्ली से बंबई तक आकर पड़ा है। गाँव को मिला नहीं है। बंबई स्टेशन पर स्टेशन मास्टर और दूसरे भाई उसे खा लेंगे तो हमारे पार्सल का क्या होगा, कौन जाने? इसलिए स्वराज्य का पार्सल हमारे गाँव के नाम का होना चाहिए और गाँव में ही आना चाहिए। पिछले पंढरपुर-सम्मेलन में मैंने कहा था कि देहात की योजना दिल्ली में नहीं बनेगी, देहात में बनेगी। तब सब अखबारों ने मुझपर टीका की और मेरी बात को अव्यावहारिक बताया। उसके बाद पंडित नेहरू की प्रेस-कान्फरेन्स दिल्ली में हुई थी। उसमें उनसे पूछा गया था कि विनोबा इस तरह कहते हैं, उसमें आपका क्या मत है? उन्होंने कहा था कि विनोबाजी के मन में क्या

है, यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु यह बात बिलकुल सच है। पं० नेहरू जानते हैं कि ऊपर से जो कारोबार चलता है, वह ठेठ नीचे तक पहुँचता नहीं है। 'राजा बोले तो दल हाले, मिया बोले तो दाढ़ी हाले' ऐसी मराठी में कहावत है। राजा जब बोलता है, तब सैन्य हलचल करता है। मिया बोलता है तो उसकी दाढ़ी हिलती है। अभी-अभी पंडित नेहरू बोले हैं कि सहकारी और सरकारी आज दोनों एक ही चीज हो गयी है। मेरे जैसा मिया हो और दाढ़ी हो तो हिलेगी। पर वे तो हजामत करते हैं, इसलिए दाढ़ी नहीं हिलती है। दिल्ली से योजना होती है तो वह ऊपर ही रह जाती है। देहात के अनुकूल नहीं होती है। देहात के लोगों को अपनी योजना स्वयं करनी चाहिए। फिर उनको बाहर से सलाह मिल सकती है, ऊपर से सलाह मिल सकती है। सबकी बुद्धि का विकास होना चाहिए।

वीरों की अहिंसा सीखें

हमारी सरकार प्रतिवर्ष तीन सौ करोड़ रुपये सेना पर खर्च कर रही है। पाकिस्तान सहित जो कि हमारा ही एक अंग है, चार सौ करोड़ सेना पर व्यय हो रहा है। एक-दूसरे से भय खाकर ही यह सेना बढ़ायी जाती है। फिर भी अन्य राष्ट्रों के सैनिक व्यय को देखते हुए यह रकम कुछ नहीं है। अतः इतना खर्च करके भी हम देश में निर्भयता पैदा नहीं कर सकते। किन्तु यदि हम शान्ति-सैनिक तैयार कर सकें तो देश की आन्तरिक रक्षा में उससे काफी मदद मिल सकती है। फिर यह सशस्त्र सेना घटाना भी सम्भव हो सकता है। अतः जब तक शान्ति-सेना का संघटन नहीं होता, तब तक देश का विकास नहीं हो सकता। देश के विकास के लिए शान्ति-सेना का निर्माण आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

कल अहमदाबाद के एक मिल मालिक भाई मुझसे मिलने आये थे। रविशंकर महाराज, वे भाई और हम, तीनों ने मिलकर बहुत-सी बातें कीं। चर्चा के बीच अहमदाबाद के दंगे का भी जिक्र हुआ। गांधीजी के शब्दों में गुजरात के पाटनगर (राजधानी) अहमदाबाद में, जिसके पास उनका आश्रम भी है और उनका नाम लेनेवाले बसते हैं, ऐसे काण्ड हों, इसका क्या अर्थ है? नेता लोग कहते हैं कि लोगों से यह अपेक्षा कैसे रखी जा सकती हैं कि वे ऐसी मारकाट और लूटपाट के स्थान में पहुँचकर शान्ति करें। अतएव पुलिस भेजकर वहाँ गोली चलानी पड़ती है। लेकिन मैं कहता हूँ कि हम लोगों से ऐसी अपेक्षा रख सकते हैं। मौके पर जान खतरे में डालकर भगवान को सौंपकर यह हिम्मत करनेवाले लोग भारत में होने ही चाहिए। फिर ऐसे लोग मिल नहीं सकते, ऐसी बात कैसे हो सकती है? ऐसी निर्भयता, ऐसी ठंडी ताकत, ऐसी अहिंसक शक्ति हमें भारत में निर्माण करनी ही चाहिए।

आजकल मैं शान्तिसेना की पुकार कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि अजमेर के सर्वोदय-सम्मेलन तक भारत में पाँच सौ शान्ति-सैनिक हो जायँगे। आप लोग उस सम्मेलन में अवश्य आयें, क्योंकि अजमेर आपका ही गाँव है। यद्यपि अजमेर राजस्थान में आता है, पर वहाँ ऊँट और रेती है। जहाँ-जहाँ रेती और ऊँट हों, वह एक ही प्रान्त माना जायगा। इस दृष्टि से देखें तो अहमदाबाद से ही ऊँट शुरू हो जाते हैं।

आपको यह सुनकर आनन्द होगा कि गुजराती जनता को सशस्त्र सेना के लिए दुर्बल कहा जाता है, फिर भी अहमदाबाद और बड़ोदा में उस दंगे के अवसर पर ऐसे शान्ति-सैनिक निकले, जिन्होंने मीठी मार खाने के बावजूद किसी तरह का पश्चात्ताप नहीं किया। यह पराक्रम वीरों की अहिंसा का है। गांधीजी जो चाहते थे, वह यह है। वह हमेशा कहते थे कि अहिंसा तो वीरों की होनी चाहिए। स्वतन्त्रता के पूर्व भले ही कायरों की अहिंसा रही हो, किन्तु अब वह चल नहीं सकती। आज या तो पराक्रमी लोगों की हिंसा चलेगी या पराक्रमियों की अहिंसा ही। आज दुर्बलों की हिंसा नहीं चल सकती। उस समय जो चल गयी, वह पुरानी बात थी। स्वतंत्र भारत में वीरों की अहिंसा को ही स्थान है। इसीलिए मैंने यहाँ उसे पैदा करने का निश्चय किया है। भारत को, विशेष कर गुजरात को यह विचार अवश्य पसन्द पड़ेगा, क्योंकि गुजरात मांसाहार-मुक्त प्रदेश है। जहाँ ऐसी शक्ति हो, वहाँ वीरों की अहिंसा ही पसन्द पड़ सकती है। इसलिए यहाँ शान्तिसेना का संघटन होना चाहिए। शान्ति के समय यह सेवा-सेना का काम करेगी, गाँव और शहर की सेवा करेगी और अशान्ति के समय जान खतरे में डालकर कूद पड़ेगी और अशान्ति मिटायेगी।

इसी तरह वीरता, निर्भयता, सेवा आदि गुणों का विकास होगा। भले ही सरकार पंचवर्षीय योजना करे, हमें गुण-विकास की इस योजना का स्वागत करना ही होगा। अतः यदि हम इन दोनों योजनाओं को साथ-साथ करेंगे तो विज्ञान-युग के लिए अपेक्षित ज्ञान-विज्ञान की योजना हिन्दुस्तान ने की, यह कहा जायगा।

मेरे प्यारे भाइयो! आप सभी शान्ति-सैनिक बनकर आयें और बूढ़े लोग भी आयें! हिंसा की सेना में तो बूढ़ों को नहीं बुलाया जाता, पर अहिंसा की सेना में जवानों, बूढ़ों व बहनों, सभीका स्वागत है। यह अन्तरात्मा की शक्ति है, शरीर की नहीं। इसमें सभीको अवकाश है। यह सेना हिंसक सेना के समान बड़ी भी बना सकते हैं। हमें गुजरात में ऐसी ही सेना बनानी है। इसे 'शांति-सेना' नाम दीजिये। मैं आप लोगों पर पूरा भरोसा रखता हूँ। इस शांति-सेना के आधार के लिए लोक-सम्मति के तौर पर घर-घर सर्वोदय-पात्र रखें। भारत में ज्ञान-विज्ञान का युग बहुत जल्द आयेगा। इसीलिए हमें लोगों के पास ज्ञान-विज्ञान पहुँचाना चाहिए। हर जगह शांति सेना और सेवा-सेना होनी चाहिए। इसीसे लोक-शक्ति का विकास होगा। गुण-विकास होगा और शांति-सेना की मार्फत लोगों के पास गुण-विकास की योजना पहुँचेगी।

(ईडर जाते हुए रास्ते में) ८-१-'५९

राजचन्द्र आश्रम में

जैन-समाज अहिंसा की तरह सत्य का मर्म भी समझे

६० वर्ष पूर्व यहाँ श्रीराजचन्द्रजी कुछ दिन आकर रहे थे। उनका यह सुन्दर स्मारक बनाया गया। मैं उस समय कुल ३ वर्ष का था, मुझे क्या पता था कि यहाँ आ पाऊँगा, खुद राजचन्द्रजी को भी क्या पता था कि कुछ दिन मुझे यहाँ रहना हो।

ईश्वर की एक योजना हुआ करती है। उसीके कारण सारी दुनिया में समान विचार-प्रवाह चलते रहते हैं। अमुक काल में अमुक विचार-प्रवाह चला करता है। पुराने जमाने में धर्म-संस्थापक हुए, फिर सन्त हुए और आधुनिक काल में अनेक लोकसेवक, समाज-सुधारक और क्रांतिकारी लोग हुए। पुराने जमाने में विचार पहुँचाने के साधन भी नहीं थे। फिर भी चीन, ईरान, अरबस्तान, फिलस्तीन सर्वत्र धर्म-संस्थापक हुए। वह धर्म-संस्थापकों का ही युग रहा है। कहा जाता है कि विचार हवा में

होता है और उसे मानव पकड़ता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि विचार ही मानव को पकड़ लेता है। विचार को मानव पकड़ता है, यह स्थूल दृष्टि और विचार मानव को पकड़ता है, यह सूक्ष्म दृष्टि कही जायगी।

इस जमाने में किसीको भी खयाल न होगा कि राजचन्द्र भाई और गांधीजी का समागम होगा। मुझे भी खयाल न था कि बापू का सान्निध्य प्राप्त होगा। यह सारा प्रवाह के कारण ही होता है।

जब मैं पहले बापू के पास पहुँचा तो वहाँ एक छोटा-सा पुस्तकालय था। दोपहर को मैं खाकर आराम करने के बदले वहीं जाकर पुस्तकें पढ़ता था। शाम को बापू के साथ घूमने जाना पड़ता था, अतः रात में पढ़ने का मौका नहीं मिल पाता था। उसी पुस्तकालय में मुझे राजचन्द्रजी की 'मोक्षमाला' पढ़ने को मिली। अभी आपने जो भजन ('अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे') गाया, ऐसे उनके अनेक भजन मुझे कंठस्थ थे। राजचन्द्रजी की एक पुस्तक डायरी के रूप में छपी है, उसे मैं पूरा पढ़ गया हूँ। खास कर मेरे भाई बालकोबा राजचन्द्र का सूक्ष्म अध्ययन करनेवाले हैं। उन्होंने बारीकी से राजचन्द्रजी का अध्ययन किया है। उनके लिए मुझे भी उनके वाङ्मय का अध्ययन करना पड़ा।

एकान्त की साधना

यह स्थान बहुत ही सुन्दर है। आपने कहा कि आजकल ऐसे स्थान सार्वजनिक बना दिये जाते हैं, लेकिन हम लोगों ने इसे साधकों की साधना के लिए ही बनाया है। यह प्रशंसनीय ही है। सचमुच ऐसे स्थान तो भक्ति, तप और ज्ञान-साधना के लिए ही होने चाहिए। हमारे शास्त्रों में भी यही सिफारिश की गयी है कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए एकान्त में जाना चाहिए और फिर समाज में उस ज्ञान की कसौटी करनी चाहिए। वेद में कहा है कि ज्ञानी पुरुष टेढ़े-मेढ़े रास्तों में, पहाड़ों में, नदियों के संगम में ध्यान करने के लिए ही पैदा हुए हैं। वही परम्परा अब तक चल रही है। इस स्थान में आनेवाला ज्ञान-संपादन करे, अध्ययन करे। ऐसे स्थान में आने पर मानव का मन शुद्ध होता है। जैसे विचार के लिए एकान्त की जरूरत होती है, वैसे ही आध्यात्मिक दृष्टि से भी कार्यकर्ताओं को ऐसे स्थान की जरूरत है। यदि ऐसे स्थान में आकर संसार को भूलकर आत्मा में डूबने का यत्न किया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है।

अभी आपने कहा कि यहाँ सभी धर्मवाले प्रवेश पा सकते हैं, पाते हैं। किसीके लिए निषेध नहीं है। राजचन्द्रजी के लिए यही शोभास्पद है और भारत के लिए भी यही शोभनीय है। भारत ने सभीका स्वागत किया, सभीका समान रूप से भरण-पोषण किया, इसीलिए इसे 'भरत भूमि' कहा जाता है। इस तरह यह स्थान निरापद और भेद रहित है, इसलिए आनन्द होता है।

साधना में क्रान्ति का समावेश

आज दुनिया में एक प्रवाह बह रहा है। उसी प्रवाह के कारण आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता बहुत बढ़ गयी है। विज्ञान के कारण मानव के हाथ में एक शक्ति आ गयी है। वह यदि उसका सदुपयोग करे तो स्वर्ग यहीं उतर सकता है, अन्यथा सर्वनाश भी हो सकता है। ऐसे शक्तिशाली साधनों के प्राप्त होने पर उनके साथ यदि आध्यात्मिक साधन न हों, अन्तःशुद्धि का गुण न हो, विचार की शक्ति न हो तो सारी दुनिया खतरे में पड़ सकती है। अतएव आज ज्ञान-चिन्तन की, मोक्ष की आवश्यकता महसूस हो रही है।

यही वृत्ति पहले भी थी। राजचन्द्रजी ने 'अपूर्व अवसर' में लिखा है :

'गजा वगर तो हाल मनोरथ रूप जो,
तो पण निश्चय राजचन्द्र मनने रहजे
प्रभु आज्ञा थाशुं तेज स्वरूप जो।'

श्री राजचन्द्रजी को जो वास्तविकता मालूम पड़ी, वह थी आध्यात्मिक तृष्णा की आतुरता। आज यदि भौतिक युग के साथ आध्यात्मिक ज्ञान की आतुरता मालूम पड़े तो क्रांतिकारी शक्ति बन सकती है। जब व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना युग की भौतिक आवश्यकता का रूप लेती है, तब क्रान्तिकारी बन जाती है।

अहिंसा तो महावीर के समय से ही चलती रही। लेकिन गांधी जी आये और उन्होंने भौतिक आवश्यकता के साथ उसे जोड़ दिया तो अहिंसा एक भौतिक आवश्यकता बन गयी। इसी तरह इस विज्ञान-युग में अपरिग्रह व मालकियत त्यागने की वृत्ति युग की माँग हो गयी है, भौतिक आवश्यकता बन गयी है। मोक्ष की क्रान्तिकारी शक्ति बन गयी है।

जैनों का दायित्व

विशेष कर जैनों को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उनका कभी यह आग्रह नहीं रहा कि अमुक विचार ही सर्वांङ्गीण है। उन्होंने 'अनेकान्त वाद' का विचार ही अपनाया है। इस वजह से जैन-समाज यन्त्रों के घर्षण के बीच तेल का काम करना है। वे स्नेह के साधन हैं। अतः उनपर यह जिम्मेवारी विशेष रूप से आती है।

जैनों के लिए यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि उन्होंने मांसाहार छोड़ दिया है। उन्होंने अहिंसा का भव्य आरम्भ किया है। उन्होंने अहिंसा के प्रयोग भी किये हैं, फिर भी वह पूर्ण अहिंसा नहीं हुई है, वह अहिंसा का आरम्भ ही कहा जायगा। अब वे सत्य का आरम्भ क्यों न करें? अहिंसा की तरह सत्य भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण चीज है। जैनों ने सत्य का आग्रह नहीं रखा, ऐसा लगता है। वे औरों की तुलना में अधिक सत्यवान क्यों नहीं दिखाई पड़ते? जितना असत्य अन्य व्यापारियों में है, उतना ही जैन व्यापारियों में भी है। जितना परिग्रह का विचार दूसरों में दीखता है, उतना ही जैनों में भी है। अहिंसा की प्रक्रिया में भी वे व्यापक विचार नहीं कर पाये। इसके लिए वे आगे बढ़कर परिग्रह से मुक्त होकर गांधीजी का ट्रस्टीशिप का विचार अपनायें। इसी तरह वे सत्य पर जोर देंगे तो उनसे कुछ काम हुआ, ऐसा माना जायगा। जिस तरह उन्होंने अहिंसा-विचार सर्वत्र प्रचारित करने के लिए ज्ञान-प्रचार किया, उसी तरह ज्ञान-प्रचार आगे बढ़ायेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। ये प्रेम भरी बातें जैन लोग मेरे पास बैठे हैं, इसलिए उन्हें लक्ष्य कर कही है, लेकिन ये बातें सभी लोगों के लिए लागू हैं।

अनुक्रम

१. नव समाज रचना···	उदयपुर	३१ जनवरी '५९	पृ० १६५
२. विज्ञान के आधार पर···	ईडर	८ जनवरी '५९	,, १६९
३. जैन-समाज अहिंसा···	ईडर	८ जनवरी '५९	,, १७१

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ- प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार–प्रकाशन, राजघाट, काशी।